गाय ही बचा सकती है प्रदूषण के इस संकट से

पर्यावरण में बढ़ते प्रदूषण के कारण विश्व भर में चिंता जतलाई जा रही है। किन्तु उसके समाधान के मूलभूत -आचरणीय आवश्यकता- की उपेक्षा हो रही है। भौतिक सुख की बढ़ती भूख के कारण आधुनिकता और प्रगतिशीलता के नाम पर प्रकृत्ति के शोषण पर विराम लगे बिना समाधान खोजना अंधेरे में सूई खोजने से भी कठिनाई भरा है। नित्य प्रति हम अपने आचरण से प्रकृति का संतुलन बिगाड़ रहे हैं। हरे भरे वनों का तो अभाव हो ही रहा है न जाने कितनी नदियां सूख गई है और जो हैं भी उनमें 20 वर्ष पूर्व के मुकाबले आधा भी जल नहीं प्रवाहित हो रहा है।

दूसरी ओर धुंआं उगलने वाली गाड़ियों, कृषि में काम आने वाले यांत्रिक उपकरणों, उपज बढ़ाने के लिए रासायनिक खादों और कीटनाशकों के उपयोग में अतिरेक से उन पौधों और कीड़े मकोड़ों का बढ़ना है जो सब प्रकार से हानि ही पहुंचाते हैं। जहां दुनिया भर के देश वर्ष में एक बार किसी आयोजन में अपने प्रतिनिधियों को भेज कर पर्यावरण में बढ़ रहे प्रदूषण पर चिंता व्यक्त करते हैं, वहीं धरती ही नहीं अंतरिक्ष को भी प्रदूषित करने वाले 'वैज्ञानिक' अनुसंधान के लिए होड़ में लगे हुए हैं।

पिछले दिनों दिल्ली और उसके आसपास छाई धुंध से हानि होने की आशंका में जहां स्कूल बंद कर दिए गये तो देशभर में बढ़ते प्रदूषण के आंकड़े पेश किए जाने लगे। दूसरी और जड़ के बजाय पत्तियों को सींचने से हरियाली बनाए रखने के समान ही वर्षाजन संभारण के लिए राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण के आदेश को क्रियान्वित करने के उपाय जो अभी तक निरोपयोगी साबित हुए हैं, को अपनाने की अनिवार्यता की ओर बढ़ा जा रहा है।

हमारे मनीषियों ने प्रकृति संरक्षण में सर्वोच्च प्राथमिकता की भावनायुक्त आचरण के संस्कार दिए थे। विश्व में तो यह स्वीकार किया जा चुका है कि भारतीय जीवन शैली ही प्राकृतिक विनाश से होने वाले भयावह माहौल से बाहर निकाल सकती है लेकिन हम भारतीय ही जिनका उस जीवन शैली में जीने का प्रतीकात्मक स्वरूप अभी भी दैनन्दिन आचरण में बना हुआ है-को अपनाने के बजाय भौतिकता के प्रवाह में आगे निकलने की होड़ में विनाश की दिशा पकड़ चुके हैं। जो आचरण व्यैक्तिक धर्म-कर्तव्य का है वह अब योजनाओं का आधार बना रहा है जिनमें धन की लूट करने की पूरी छूट बनी हुई है, यही कारण है कि प्रति वर्ष करोड़ों पौधारोपण के बावजूद वृक्षों की संख्या घटती जा रही है, नदियों की सफाई, गहराई बढ़ाने की योजनाएं नाजायज तरीके से धनार्जन का माध्यम बन गई है और हम देशी-विदेशी 'विशेषज्ञों' को मोटी रकम देकर इस स्थिति से निपटने के लिए उनसे उपाय बताने की अपेक्षायुक्त दायित्व सौंपकर अपने दायित्व से पल्ला झाड़ लेते हैं।

पिछले दिनों यह कहा गया है कि दिल्ली और आसपास जो धुंध छाया था, उसका कारण हरियाणा ओर पंजाब में किसानों द्वारा धान का पैरा या परोला जलाना है। ऐसा पहली बार नहीं हुआ है यांत्रिक खेती के बढ़ते जाने के कारण उन्हे यंत्रों के द्वारा खेत में ही जला दिया जाता है। गन्ने की फसल कटने के बाद अधिक उपज की नियत से उसके ठूठ को जलाने का तो आम रिवाज है। जब भी कुछ जलेगा उससे धुंआ उठेगा ही और आकाश में नमी होने, वायु प्रवाह न होने के कारण वह आसपास पर छाया रहेगा। स्वांस लेने में कठिनाई पैदा करेगा, अनेक बीमारियों को जन्म देगा।

अन्न हमारी आवश्यकता है। अन्न का उत्पादन बंद नहीं किया जा सकता और अन्न बिना पौधा के हो नहीं सकता। पहले यह पौधा भूसे के रूप में पशु आहार बनता था तथा कुछ अन्य अनाजों के पौध को घर का छप्पर बनाने या इसी प्रकार के अन्य घरेलू काम में उपयोग किया जाता था। अब आधुनिकतायुक्त घरों में उनकी जरूरत नहीं है और न यांत्रिक कृषि के कारण पशु आहार के रूप में उपयोग की तो उसे जलाने के अलावा विकल्प क्या बचता है ?

इस समस्या की विकरालता को देखते हुए हमारे कुछ किसानों ने खेती के परंपरागत तरीकों को अपना कर जो उदाहरण पेश किया है उसका अनुशरण संभवत: सबसे उपयुक्त समाधान होगा। क्योंकि बैल से खेती न होने के कारण जो बछड़ों को कसाईखाना नहीं भेजना चाहते वे उसे छुट्टा छोड़ देते हैं जो खड़ी फसल को नुकसान पहुंचाते हैं और शहरों में सड़कों पर घूमते हुए दुर्घटना का कारण बन रहे हैं। सरकारें इसके लिए जो अंतिम स्थल बना रहा है उसका प्रभाव ऊंट के मुंह में जीरा से अधिक कुछ भी नहीं हो सकता।

कतिपय किसानों ने परंपरागत कृषि कर्म को अपना कर जो परिणाम प्राप्त किया है, यदि उसका सम्यक अध्ययन किया जाय तो न तो रासायनिक उर्वरक की जरूरत होगी और न उसके संरक्षित रखने के लिए रासायनिक तरल पदार्थों की। हरित क्रांति के नाम पर अंधाधुंध रासायनिक उर्वरकों, हानिकारक कीटनाशकों, हाईजिन बीजों अधिकाधिक भूजल उपयोग से भूमि की उर्वरा शक्ति, उत्पादन, भूजलस्तर और मानव स्वास्थ्य में निरंतर गिरावट आती जा रही है। किसान बढ़ती लागत, बाजार पर निर्भरता और आधुनिकता के नाम पर सरकारी कृषि नीति के कारण आत्महत्या तक के लिए मजबूर हो रहे हैं। तकनीक की जैविक खेती जैसी वर्मी कम्पोस्ट, कम्पोस्ट बायोडायनामिक इतनी जटिल है कि किसान उनमें अपने को खपाने के बजाय, बाजार में मिलने वाले उर्वरक पर अधिक निर्भर रहता है।

क्या कोई ऐसी पद्धति है जिससे किसानों को खाद बीज के लिए बाजार पर न निर्भर नहीं रहना पड़े, उत्पादन न घटे,खेत उपजाऊ बने रहे और मनुष्य रोगग्रस्त न हो। कुछ किसानों ने प्रयोग के आधार पर जो परिणाम प्राप्त किए हैं उसके आधार पर उनका दावा है कि शून्य लागत की खेती को अपना कर इसका समाधान प्राप्त किया जा सकता है।

यह शून्य लागत खेती क्या है और क्या किसानों के लिए इसे अपनाना सरल होगा ? इसी तथ्य को समझाने के लिए दिसम्बर महीने में उत्तर प्रदेश के प्रत्यक विकास खण्ड से कम से कम एक किसानो को बुलाकर लखनऊ में पांच दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया जा रहा है जिसमें शून्य लागत खेती के पुरोधा पुणे निवासी पद्मश्री सुभाष पालेकर किसानों को ऐसे उपाय के गुर समझायेंगे जिसका प्रयोग

उन्होंने स्वयं किया है। इसमें खेती में लागत, प्राकृतिक व्यवस्था से तादात्म, देशी गाय पालन, देशी केचुंए का महत्व, बीजाशोधन के तरीके, गायमूत्र आधारित खाद और छिड़काव, वनों से सूखी खाद की उपलब्धता, भूमि का शोधन और संवर्धन, सिंचन के तरीके और बहुफसली पद्धति को अपनाने के तरीके बताये जायेंगे। श्री पालेकर का दावा है कि एक देशी गाय के सहारे दस से तीस एकड़ तक खेती की जा सकती है।

पर्यावरण प्रदूषण, प्रदूषित खाद्य पदार्थों के उपयोग से बचने और स्वस्थ जीवन यापन के लिए हमारे मनीषियों ने गाय आधारित जीवन का निर्देश दिया है। आज पर्यावरण में ही नहीं चौतरफा जो प्रदूषण है उससे मुक्ति पाना है, भूमि की उर्वरा को न केवल बनाये रखना अपितु बढ़ाना भी है तो हमें गाय के दूध से अधिक उसके गोबर और मूत्र की उपयोगिता को बढ़ाना होगा। एक किसान विचारक ने ठीक ही कहा है कि गाय का दूध तो सह उत्पाद (बाई प्रोडक्ट) है, क्योंकि दूध कुछ ही महीने मिलता है जबकि उसका गोबर और मूत्र नित्य के उत्पाद है उनका सम्यक उपयोग करने के बजाय हम बाई प्रोडक्ट मात्र पर निर्भर होते जा रहे हैं जिसकी मिलावट के कारण गुणवत्ता घटती जा रही है। भारतीय गाय का दूध भी कितना उपयोगी है, यह बात हम भले ही भूल गये हों लेकिन इस्लामी आस्था के केंद्र सऊदी अरब ने उसे बखूबी समझा है।

दुनिया की सबसे बड़ी गौशाला सऊदी अरब में ही है जिसमें एक लाख से अधिक गायें हैं। सत्ता, स्वास्थ्य के सम्बन्ध में दृष्टिकोण परिवर्तन के कारण स्वस्थ्य रहने के लिए जिस प्रकार योग विश्वव्यापी बना है वैसे ही गौरक्षा और सम्वर्धन से खेती में आमूलचूल परिवर्तन कर न केवल स्वास्थ्य कारण अन्न को उत्पादन करने के लिए कृत्रिम उपायों से बचा जा सकता है, बल्कि पर्यावरण को दूषित होने से भी बचाया जा सकता है। गाय को यो ही माता की मान्यता नहीं मिली है। समुद्र मंथन से जो रत्न निकले थे, उनमें गाय ही एक रत्न है जो हमारे पास है उस रत्न की महत्ता समझने की महती आवश्यकता है।